महाराज श्रेणिक
और
श्रमण भगवान महावीर

(मूल कथा जैन आगम अन्तगढ़)

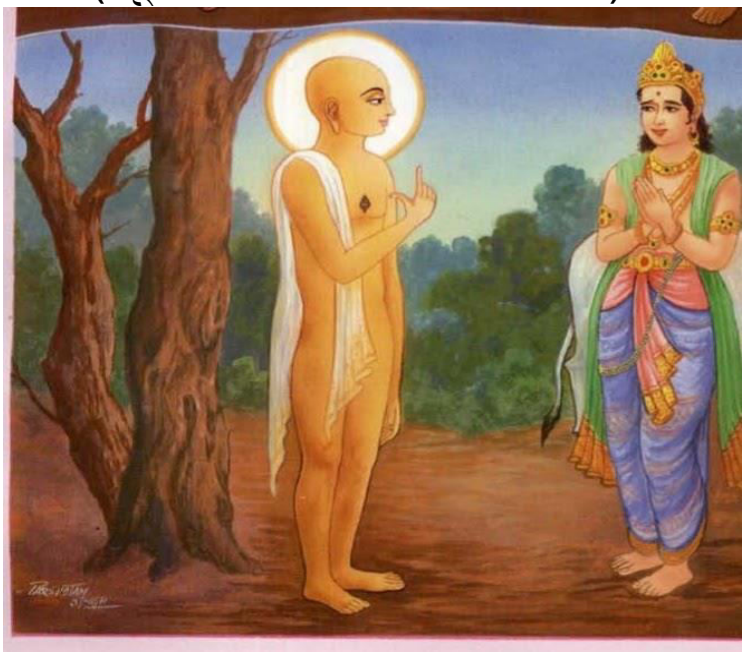

स्वतन्त्र जैन जलन्धर
9855285970

श्रेणिक महाराज और श्रमण भगवान महावीर

श्रमण भगवान महावीर वर्तमान चौबीसी के अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर और श्रेणिक महाराज भावी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर श्री पद्मनाभ को कोटिश वन्दन। महावीर के अरिहन्त काल में राजगृह नगर के महाराज शिशुनागवंशीय प्रसन्नजीत का शासन काल था। महाराज वैभवशाली शुभ लक्षणों से युक्त शरीर और देदीप्यमान यश का धारण करनेवाला, अत्यन्त ज्ञानवान, कल्पवृक्ष के समान दानी, चन्द्रमा के समान तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी, इन्द्र के समान परम ऐश्वर्यशाली, कुबेर के समान धनी और समुद्र के समान गम्भीर था। इसके अतिरिक्त वह त्यागी था, भोगी था, सुखी था, धर्मात्मा व चतुर शूर और निर्भय था। महाराज ने चिरकाल पर्यन्त भोग किया, समस्त पृथ्वी को उपद्रवों से रहित कर दिया। भव्य जीवों को धर्म की कृपा से राज्य सम्पदा की प्राप्ती और धर्म पुण्य से उत्तमोतम स्त्रियाँ और आज्ञाकारी अत्तम पुत्र भी मिलते हैं।

दोनों राजा-रानी के पुण्य उदय से महान ऋद्धिधारक श्रेणिक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। कुमार श्रेणिक में सर्वोत्तम गुण थे, उसका रूप शुभ था और अतिशय अत्यन्त निर्मल था। कुमार श्रेणिक के कामिनी स्त्रियों के मन को लुभाने वाले थे।

कुमार श्रेणिक जन्म से पहले की थोड़ी से दृष्टि डाले कि किसी का उपहास करना और उपेक्षा कर अपनी वचनबद्धता को विस्मृत हो जाना अन्याय से दुःखी आत्मा क्या रुप धारण करती है, प्रभु

महावीर ने कर्म बंध का उल्लेख करते हुए राजा श्रेणिक और कोणिक के पूर्व भव बताया।

पूर्वभव में राजा श्रेणिक भरत क्षेत्र का वसन्त नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था और उसकी पटरानी अमरसुन्दरी नामक की देव कन्या थी और उसके पुत्ररत्न पैदा हुआ जिसका नाम सुमंगल (श्रेणिक) था और जितशत्रु का मन्त्री के श्येनक नाम का पुत्र हुआ जो पूर्वकृत प्रबल पाप कर्मों से जुगस्पाप्रेरक शरीर जिसकी अकृति देख सुमंगल उपहास करता रहता था जिससे श्येनक अति दुःखी होता था वह इस अपमान को सहने में विचलित हो जाता था और अस्वस्थ हो गया आखिरकार दुःखी हो कर बिना किसी को बताए वह वसन्तनगर से दूर प्रदेश जा कर तपस्वियों के सम्पर्क में आया, दुख-गर्भित वैराग्य हो गया दीक्षा धारण कर घोर तपस्या मास-मास का तप करने लगा । इधर सुमंगल वसन्तपुर का महाराजा बन गया । श्येनक भी विचरते हुए वसन्तनगर पधार गया जनता पहचान लिया यह मन्त्री पुत्र घोर तपस्वी है और उनका आदर-सम्मान करने लगे और महाराजा सुमंगल को भी पता चल गया और वह प्रायश्चित के भाव से उसको मास खमण के पारणें के लिए प्रार्थना कि जिसे शेयनक ने सहर्ष स्वीकार कर ली। समय आने पर श्येनक राजमहल पहुँचा कि महाराज अस्वस्थ हो गये और किसी ने पारणें के लिए नहीं कहा, श्येनक वापिस अगले मास खमण धारण कर तप में लीन हो गया फिर सुमंगल ने महल में पारणें करने की विनती की और समय आने पर बिमार हो गया, फिर अगले मास खमण में लीन हो गया और फिर स्वस्थ होकर राजमहल में पारणे की विनती की ऐसे छः मास बीत गये और

श्येनक पारणें के लिए राजमहल गये, पारणे की पूरी तैयारी की गई, जब श्येनक राज महल पहुंचा तो राजा अस्वस्थ हो गये, कर्मचारियों ने कहा- यह मनहूस है जब आता है महाराजा बिमार पड़ जाते है और उसकी पिटाई कर डाली जिससे श्येनक का कोई भी अंग ठीक न रहा और तड़पता हुआ नियाना कर लिया कि मेरी तपस्या का फल मैं इससे आवश्य बदला लूँ और मर कर वाणव्यंतर देव बना, उदर सुमंगल भी स्वस्थ होकर प्रायश्चित भाव से तापस बन गया और मृत्य के बाद व्यंतर देव बना । आगे चलकर दोनों च्यवन कर सुमंगल राजा श्रेणिक बना और श्येनक महारानी चेलना के गर्भ में आकर कौणिक के रुप पुत्र हुआ ।

यद्यपि कुमार श्रेणिक बुद्धिमान चतुर और सज्जनों को मान्य था। उसने बिन परिश्रम के के शीघ्र ही शास्त्ररूपी समुद्र को पार कर लिया, क्षत्रिय धर्म की प्रधानता के कारण अनेक प्रकार की शास्त्र विद्याएं भी प्राप्त कर ली। श्रेणिक के अतिरिक्त महाराज प्रसन्नजीत के पाँच सौ पुत्र और भी थे। वे पुण्यात्मा सर्वगुण सम्पन्न थे।

महाराज प्रसन्नजीत का पड़ोसी राज्य चन्द्रपुर के राजा सोमशर्मा से विवाद हो गया और सोमशर्मा हार गया और उसने ठान लिया कि एक दिन बदला आवश्य लेना है। सोमसर्मा ने एक चाल चली, उसने उत्तमोतम आभूषण की भेंट के साथ एक वीत नाम का घोड़ा भी भेजा यह घोड़ा देखने में सधारण परन्तु सर्वथा दुष्ट, अशिक्षित एवं धोखेबाज था। महाराज सोमशर्मा की चाल को न समझ कर उसके गुणगान करने लगे और कहा यह घोड़ा कोई सामान्य नहीं होगा, यह समस्त घोड़ों का शिरोमणि अश्वरत्न होगा।

उस घोड़े की परीक्षा लेने के लिए सवार हो गया। सवार होकर वन की और रवाना हो गया। जब मध्य वन मे पहुँचे घोड़े को कोढ़ा लगाया तो फिर क्या ? कोड़ा लगते ही अशिक्षित घोड़ा उछलकर भंयकर वन मे पहुँच गया जहाँ हाथी चिंघाड़ रहे थे, रीछ भयंकर शब्द कर रहे थे, बन्दर चित्कार कर रहे थे कि घोड़े ने महाराज को ऐसे अन्धकारमय गड्ढे में गिरा दियाँ कि जहां सूर्य कि किरण भी नही पड़ती थी।

दुःखो का समूह कहाँ मगधदेश का स्वामी और कहाँ महादुःखकारी वन। राजगृह नगर में महाराज के लापता होने पर नगर में शोक व चिन्ता छा गई। रणवास मे रानियां शोक ग्रस्त होकर मूर्च्छित हो गई, सेना और पुत्रों की तलाश के सब प्रयास विफल हो गये।

जिस वन मे महाराज गड्ढे में पड़े ते वहां का स्वामी भीलों का पल्ली समस्त भीलों का अधिपति क्षत्रिय यमदण्ड नाम का राजा था उसकी पटरानी सौन्दर्य की देवी थी उनकी एक कन्या उत्तममुखवाली तिलकवती नाम की थी। वन मे क्रीड़ा करता हुआ उस गड्डे के नजदीक आया तो देखा यह अत्यन्त दुःखी कौन हो सकता है ? पता चला कि यह तो राजगृह के स्वामी है। अपने घोड़े से उतरकर महाराज को नमस्कार कर, पूछा महाराज यह सब कैसे हुआ ? महाराज ने अपनी सारी व्यथा सुनाई। और पूछा तुम कौन हो ? अपना परिचय देते हुए भील ने कहा- महाराज आप मेरे घर पधारिये।

उसके घर का भोजन शुद्ध नहीं था ,तो भील ने कहा मेरे पास दूसरा उपाय भी है मेरी पुत्री तिलकवती शुद्ध भोजन तैयार करती है और आपकी सेवा भी करेगी। पिता की आज्ञा पाकर तिलकवती ने मगधमहाराज की सेवा में लग गई। महाराज स्वस्थ चिन्तामुक्त हो गये। मगधमहाराज के मन में तिलकवती बस गई और भील से तिलकवती के साथ विवाह का निवेदन किया। भील, महाराज कहां आप और कहाँ मैं, मेरी पुत्री, आपके पास अनेकों सुन्दरियां है, वह इसे लज्जित करेगीं और आपके श्रेणिक जैसा महा निपुण युवराज इसके लड़के को नौकर समझेगे और तिलकवती दुःखी होगी, हाँ एक बात है कि आप वायदा करो कि इसके लड़के को ही राज तिलक किया जाए गा, तो मुझे स्वीकार है मगधमहाराज ने उसकी सब शर्तें मन्जूर कर ली और तिलकवती से पणिग्रहण कर लिया और उसको साथ लेकर राजगृह नगर को प्रस्थान कर दिया।

जब राजगृह नगर निवासियों को सूचना मिली तो वह सब स्वागत के लिए उमड़ पड़े। नगर में प्रवेश हुआ और तिलकवती को सुशोभित क्रीड़ा स्थल भवन में प्रवेश करवाया गया। मगधमहाराज तिलकवती के साथ भोग क्रीड़ा में मस्त हो गया । और तिलकवती को पुत्ररत्न की प्राप्ती हुई, जिसका नाम चलाती रखा गया। उसके लालन-पालन की उचित व्यवस्था की गई। नगर के शासन का कार्यभार भली-भांती चल रहा था। उधर चल्लाती भी अपनी यौवन अवस्था में युवराज का रूप धारण कर रहा था।

मगधमहाराज अब शासन की बागडोर किसको दें, चिन्ताग्रस्त हो गये । एक उपाय मन में आया सभी निपुण राजकुमारों को भोजन पर बुलाया, स्वर्ण के थाल सजाए गये उसमें

स्वादिष्ट व्य़ञ्जन परोसे गये, जब सारे युवराज खाने लगे तो कुत्ते छोड़ दिये गये, कुत्ते व्यञ्जनों से अकर्षित लपक पड़े, सब युवराज दौड़ गये, श्रेणिक बैठा रहा, उसने सब के व्यञ्जन दूर फैंक दिये जिस से कुत्ते दूर चले गये और श्रेणिक ने आनन्द से भोजन किया। मगधमहाराज जान गये, जो कुत्तों को नहीं संभाल सके वह राज्य कैसे संभालेगें, केवल श्रेणिक ही उपयुक्त है, परन्तु जो मैंने वचन दिया हुआ है उसका क्या होगा, मेरा क्षत्रिय धर्म नहीं रहेगा। मैं तो पाप का भागी बन जाऊँगां। चिन्ताग्रस्त महाराजा परेशान हो रहा था कि एक मन्त्री ने पूछ लिया, महाराज आप क्यों परेशान हैं ? महाराज ने अपनी सारी व्यथा मन्त्री को बता दी, मन्त्री कोई बात नहीं, श्रेणिक को देश निकाला दे देते हैं, तो चिलाती को राज्य सौंप दीजिए।

मन्त्री-यह काम मैं कर दूँगा। मन्त्री श्रेणिक के पास गया और कहने लगा महाराज आपसे बहुत क्षुब्ध हैं, आपने कुत्तों के बीच बैठकर भोजन कर लिया। कोई अनहोनी न हो जाए आप तुरन्त यहां से कहीं गुप्त स्थान पर चले जाओ। श्रेणिक ने बात मान ली और वहाँ से चल दिया।

चल्लाती को शासन का कार्यभार संभाला गया। चल्लाती न तो निपुण था, क्रूर और पापी, व्यसनी भी था। राज्य में चोरी और अनैतिक घटनाएँ बढ़ने लगी, चारों तरफ असन्तोष फैल गया। उदर श्रेणिक ने चलते चलते, नंदीग्राम के पास पहुँचे, वहाँ श्रेणिक की इन्द्रदत्त से भेंट हुई, वह भी भोजन की तलाश में था। उसने कहा नंदीग्राम में एक विपुर के पास चलते हैं, उस से कुछ जल-पान की

याचना करते हैं। परन्तु उस विपुर ने इनकों ठुकरा दिया और वहां से दोनों एक बोद्धभिक्षुओं के आश्रम में पहुँचे। एक बोद्ध भिक्षु ने श्रेणिक का मस्तक देखकर कहा- हे राजकुमार श्रेणिक तुम यहां कैसे? श्रेणिक ने अपनी सारी व्यथा सुना दी, बोद्धाचार्य ने कहा- पहले आप खाना खाओ, विश्राम करो, तब हमारे प्रवचन सुनो। इन्द्रदत्त को पता चल गया यह तो राजकुमार है, वह इसके साथ ही रहने लगा। खाना खाया विश्राम किया तब बौद्धाचार्य से श्रवण करने के लिए बैठ गये। हे राजकुमार । तुम शीघ्र ही राज्य प्राप्त होने वाला है, इसलिए तुम बौद्ध धर्म स्वीकार कर लो, श्रेणिक ने बोद्धधर्म स्वीकार कर लिया और कुछ दिन वहाँ रहने के उपरान्त वहाँ से चल दिए। एक मनोहर वेणपद्म नगर तलाब के पास बैठ गये और इन्द्रदत्त को कहा- तुम अब अपने मनोहर नगर को जाओ। इन्द्रदत्त ने कहा- एक बात है जब तक मैं न कहूँ तुम यहां से जाना नहीं। इन्द्रदत्त ने कुछ वार्तालाप में अनुमान लगाया कि शायद यह कुछ पागल है क्योंकि श्रेणिक के उत्तर बहुत गम्भीर और युक्तिवान होते थे जिसे इन्द्रदत्त नहीं समझ सका। श्रेणिक वहीं बैठा रहा और इन्द्रदत्त अपने नगर की ओर प्रस्थान करने लगा। घर पहुँचा मेल-मिलाप हुआ, खुशी की लहर दौड आई। इन्द्रदत्त की एक सुन्दर कन्या थी नंदवती, उसने पूछा-पिता जी आप इतने दिन कैसे रहे,आपके साथ कौन था ? इन्द्रदत्त ने सारी बात बता दी और कहा कि मेरे साथ एक पागल था, वह उल्टे-पुल्टे जवाब देता था, परन्तु वह रूपवान और अति चातुर भी था। नंदवती नहीं पिता जी- उसकी क्या चेष्टा देखी, उसकी उमर क्या है और यहाँ किस लिए

आया है। पिता के उत्तर सुनकर कहने लगी। हे तात। वह अत्यन्त बुद्धिमान, विद्वान श्रेणिक है और तलाब के पास बैठा है वह शीघ्र अपनी सखी निपुणमती के पास पहुँची और कहा उस रूपवान को शीघ्र ही ले कर आओ। निपुणवती ने पहले श्रृंगार किया और उसको लेने के लिए चली गई। वहां पहुँचकर कहने लगी- हे राजकुमार तुम प्रसन्न तो हो, क्या तुम ही इन्द्रदत्त के साथ आए हो ? राजकुमार ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा- तुम क्या चाहती हो, उसने नंदादेवी के शरीर की उपमा कर उसका निमन्त्रण दिया और वापिस चल दी, श्रेणिक ने पूछा, इन्द्रदत्त का घर कहाँ है? वह कानों के साथ कुछ विशेष पत्ते का इशारा कर चली गई। श्रेणिक ने तलाब में श्नान किया और नगर की ओर चल दिया। नगर में प्रवेश कर इन्द्रदत्त के घर की तलाश करने लगा, तभी उसको विचार आया कि पत्ते का इशारा जिस घर में वृक्ष है वहीं इन्द्रदत्त का घर है। एक घर में वृक्ष देखकर वहां रुक गया और वहाँ वे इसकी बुद्धिमानी को परख रही थी और प्रवेश करवाया। नन्दवती श्रेणिक के खान-पान का उचित व्यवस्था करने लगी और मन ही मन में प्रेम जागृत हो गया। इन्द्रदत्त समझ गया कि नन्दवती श्रेणिक से प्यार करती है और दोनों का विवाह कर दिया। कामभोग में मस्त नन्दवती के गर्भ ठहर गया और एक पुण्यशाली जीव का जन्म हुआ, जिसका नाम अभय कुमार रखा गया।

राजगृह के उचित शासन के लिए मगधमहाराज ने श्रेणिक को बुला भेजा और वह जब राजगृह में पहुँचा तो चल्लाती

राजगृह छोड़ कर दौड़ गया। उचित व्यवस्था के लिए श्रेणिक का राज्यतिलक किया गया।

एकबार श्रेणिक की दृष्टि महाराज चेटक की पुत्री चेलना पर पड़ी, जो अप्सरा से कम नहीं थी और उस से शादी कर ली वह जैन धर्म श्रमण भगवान महावीर की श्राविका थी, कदाचित् राजगृह में बौद्ध साधुओं का संघ आया, महाराज ने उनकी बहुत प्रशंसा की और महारानी चेलना को बताया कि वह बहुत ज्ञानी हैं। चेलना यदि वह ज्ञानी हैं तो मुझे भी उनके दर्शन करवा दो। यदि मेरा मन जम गया तो मैं भी बोद्ध धर्म स्वीकार कर लूँगी। मुझे कोई मजबूरी नहीं कि मैं जैन धर्म अनुयायी रहूँ परन्तु बिना परीक्षा मैं धर्म परिवर्तन उचित नहीं समझती। महाराज और महारानी बौद्ध मंडप में दर्शन हेतु पहुँचे, तब बौद्ध भिक्षु से कुछ प्रशन भी किये परन्तु वे सब मौन रहे, महाराज वे ध्यान साधना में बात नहीं करते। महारानी ने इन्हें मायाचारी समझा और शीघ्र ही मंडप को आग लगवा दी। बस फिर क्या था सब इधर-उधर दौड़ने लगे। यह देखकर महाराज कुपित हो गये। तुम ने बड़ा नीच काम किया तुम इनको ढ़ौंगी समझती है। तुम जैन धर्म को उत्तम मानती है तो जैन धर्म दया-प्रधान है, तेरे इस दुष्ट कार्य से दया धर्म कहां गया।

महाराज को कुपित देखकर बड़ी विनयभाव से महारानी बोली- महाराज किसी ब्रह्मचारी से मुझे मालूम हुआ कि इन बौद्ध भिक्षुओं की आत्मा मोक्ष में है, इन के शरीर अब खोखले पड़े हैं, यह जानकर कि इन को वेदना न सहनी पड़े आग लगवा दी। शरीर जलने से सब सिद्ध हो गये। मैंने तो इन सब को भव-भ्रमण से मुक्ति के लिए यह काम किया। आप विश्वास करे कि बोद्ध धर्म गुरुओं का ध्यान नहीं

था, केवल भोली जनता को ठगने का तरीका था। अब आप शान्त रहीये और बोद्ध भिक्षुओं को ढ़ोंगी समझिये। महाराज अनुत्तर हो गये परन्तु चित्त शान्त नहीं हुआ, विचार करने लगे कि मेरा नाम श्रेणिक नहीं यदि मैं इसको बौद्ध अनुयायी न बना दूँ।

एक दिन महाराज के मन में शिकार खेलने का विचार आया और सेना को लेकर जंगल मे चले गये, वहाँ एक जैन सन्त (यशोधर-अनाथी मुनि) ध्यानस्थ समाधि में लीन था, वहीं एक साँप दिखा महाराज ने मार कर उस सांप को साधु के गले में डाल दिया, जिससे श्रेणिक ने नरक का बंध कर लिया। महाराज ने पाँच सौ शिकारी कुत्ते सन्त पर छोड़ दिए, महाराज जरा भी आवेष में नहीं आए और विचार करने लगे मेरा पुण्योदय से मेरे कर्म क्षय हो रहे हैं। महाराज ने देखा कि कुत्ते सन्त की तीन बार प्रदक्षिणा कर मौन हो गये। महाराज ये कोई सन्त नहीं, यह कोई तान्त्रिक है जिसने मेरे शिकारी कुत्तों को कील दिया। जब बौद्ध भिक्षुओं को पता चला कि श्रेणिक ने जैन सन्त पर अत्याचार किया है वे बहुत प्रसन्न हुए। महाराज तीन दिन तक गायब रहकर चेलना के महल में गये और सारी घटना सुनाई। चेलना अवाक होकर सोचने लगी. मैं किस पापी को अपना हृदय दे बैठी। महाराज, प्रिये। चिन्ता मत कर वह सन्त कब का सर्प फैंक कर भाग गया होगा। नहीं, महाराज, मेरा गुरु ध्यानस्थ ही होगा, जैन सन्त तो पृथ्वी के समान अचल होते हैं समुद्र के समान गम्भीर, वायु के समान निष्परिग्रह और अग्नि के समान कर्म भस्म करने वाले होते हैं। विश्वास करो कि मेरे गुरु परिषहों से डरने वाले नहीं। जो माँस, मधिरा भक्षण करने वाले मेरे गुरु नहीं हो सकते।

महाराज। प्रिये दोनों चलते हैं वहाँ सन्त ध्यानस्थ है या नहीं, जा कर क्या देखा कि सन्त कह रहा है यह राजा ने मेरे उपर बहुत उपकार किया है। श्रेणिक ने कहा- आप सन्त क्यों बने, महाराज मैं अनाथ हूं, मैं तुम्हारा नाथ बनता हूँ, महाराज आप स्वयं अनाथ हैं, कैसे मेरा राज्य ,धन-दौलत, परिवार अनेकों रानियां मेरे पास हैं मैं अनाथ कैसे। महाराज यह सब कुछ मेरे पास भी था, मैं बिमार पड़ गया, सब वैद्य-हकीम, तन्त्र-मन्त्र असफल हो गये, वेदना असहय थी, मैंने निश्चय किया मैं सन्यास दारम कर लूँ, मेरी वेदना समाप्त हो गई।

महाराज आप कृपानिधि हैं, मेरे अपराध से मुझे मुक्त कीजिए। सन्त धर्म से ही उत्तम कुल सुख-सम्पदा मिलती है, बस धर्म पर विश्वास करो। अब महाराज श्रेणिक को बोद्ध धर्म से जैन धर्म का अनुयायी बनाया।

एक बार महाराज श्रेणिक श्रमण भगवान महावीर के दर्शन हेतु जा रहे थे, उसके आगे दो घुड़सवार अंगरक्षक चल रहे थे। उद्यान के पास प्रसन्नचन्द्र मुनि अठारह पापों का त्याग कर ध्यानस्थ समाधि में खड़े थे, एक अंगरक्षक ने कहा- कितना महान तप कर रहा है, दूसरा बोला ये कायर अपने आनाढ़ी पुत्र को राज्य सौंप कर तप कर रहा है, यदि कोई आक्रमण कर दे, तो वह संभाल नहीं सकता, ये शब्द उसके कान में पड़ गए, तुरन्त वह मन ही मन आक्रमण को तैयार होकर युद्द करने लगा। इतने में महाराज श्रेणिक के पास पहुँच गए, वन्दना करने के उपरान्त,भगवन यदि ये मुनि अभी काल करे तो कहाँ पहुंचे। भगवन- नरक में, इतनें में मुनि ने सिर पर हाथ लगाया तो प्रायश्चित करने लगा, ओह मैं तो सर्वथा अठारह पापों

का त्याग कर चुका हूँ, इतने में उसे केवलज्ञान हो गया और देव दुन्दभि से आकाश गूँज उठा। श्रेणिक भगवान ये क्या, भगवन- उसको केवलज्ञान हो गया।

श्रेणिक भगवन मेरा भविष्य- नरक।

कोई उपाय बतलाओ-भगवन, कृपा दासी से किसी सन्त को आहार दिलवा दो, दूसरा उपाय उस कसाई को एक दिन के लिए पशु वध रुकवा दो, तीसरा पुनिया श्रावक से सामायिक खरीद लो। चिन्ता मत कर आगामी चौबीसी में तुम प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ होगें।

राजा ने दासी से आहार के लिए कहा- वह नहीं मानी, राजा ने उसके हाथ पर कड़छी बंधवा दी, जब आहार देने लगी तो बोली मैं नहीं, राजा की कड़छी दे रही है, कार्य निष्फल रहा।

राजा ने उक्त कसाई को एक दिन के लिए, कुँए में डलवा दिया कि यह पशु वध न कर सके, कसाई ने कुँए के दिवार पर पाँच सो लकीरें खैंच कर, अंगुल फेर दी, भावों से हत्या कर दी, यह भी प्रयास विफल हो गया।

राजा मोतियों-हीरे जवाहरात का थाल भरकर पुनिया श्रावक के पास गया, यह लो, मुझे अपनी सामायिक दे दो। पुनिया श्रावक- महाराज सामायिक न बिक सकती है न खरीदी जा सकती है। श्रेणिक का कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ।

महारानी चेलना के गर्भ में आकर कौणिक के रुप पुत्र हुआ । दोहद के समय महारानी को भयकारक स्वप्न दिखाई दिए, जैसे महाराज के कलेजे का मांस भक्षण, जिससे महारानी अत्यन्त दुःखी रहने लगी । पुत्र रत्न को जन्म दिया। चेलना के मन में शंका थी कहीं

अनर्थ न हो जाए, उसने बालक को जन्म देते ही दासी द्वारा कूढ़े के ढ़ेर पर फैंकवा दिया। जब श्रेणिक को पता चला तो वह नंगे पाँव दौड़ा और बच्चे को उठा लाया।

रात्रि काल में रानी चेलना देवी को निद्रा उचट गई। देखा कि वातायन की तरफ कुछ ज्वलित पदार्थ नासारन्ध्र को असहज कर रहा है विद्युत गति की तरह चेलना तिरस्कारिणी के समक्ष गई व जाकर देखती है कि यज्ञ वेदी की अग्नि पुनः जाज्वल्यमान हो गई व पूरा स्वागत कक्ष जल कर क्षार हो चुका है। वही पावक अब महारानी के कक्ष में भी प्रवेश पा चुकी है। राजा श्रेणिक अभी भी पूर्णतः निद्राधीन है। जब चेलना द्वारा अग्नि को शांत करने के सारे प्रयत्न विफल हुए तो राजा को उठाया गया। पर्णकुटीर की तरह पूरा महल भयंकर लपटों के आगोश में आ गया। "स्वामी! हम हवा महल में नहीं अग्नि महल में हैं। चारों तरफ पावक का ही तांडव हो रहा है। शीघ्रता से कुछ बचाव का कार्य करें।"

चेलना ने भयव्याप्त चक्षु राजा के मुख की तरफ करके कहा, "यह सदन सर्वत: दिशाओं से घिर चुका है अग्नि से।" राजा ने शयन कक्ष के मुख्य द्वार पर दृष्टिपात किया। वह पूरी तरह भस्मीभूत होने के लिए तैयार था। उस समय महल के कंचुकी एवं रक्षक भी बाहर आ चुके थे और महल के बाहर जनरव स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था, राजा श्रेणिक ने द्रुतगति से दोनों पर्यंको के परिच्छेद को जोड़कर गवाक्ष पर रज्जू की तरह बाँध दिया। तब तक ज्वाला भी पर्यंक के पर्याप्त नजदीक आ चुकी थी। रानी चेलना को बाहुयुगल से अंक में

लिया एवं उसी रज्जू रूपी परिच्छद के सहारे महल के नीचे उतर गए। "राजकुमार कहाँ है?" श्रेणिक के मुख से कानों को बहरा कर देने वाली चीत्कार महारानी चेलना को झकझोरते हुए निकली। चेलना तो अब बेसुध हो अविरल अश्रु बहा रही थी। जैसे ही ये शब्द कानों में पड़े तो निश्चेष्ट हो भूमि पर गिर पड़ी।"चर, अचर, आरक्षी, दण्डधर ! तुम सब यहाँ खड़े-खड़े क्या देख रहे हो?" राजकुमार भीतर शयन कक्ष में ही रह गए है। जल्दी जाओ। उन्हें सुरक्षित ले आओ। "श्रेणिक के शब्दों में कठोर आदेश व रोष था, "मेरा मुँह क्या ताक रहे हो? राजकुमार महल में है, सकुशल उन्हें बाहर ले आओ।" कौन यमपाश में जाए? अग्नि देवी की भेंट कौन चढ़े ? सभी को अपना जीवन प्यारा है। राजा ने चरनायक कुंडवैराट से जो कहा- "तुमने तो बड़े-बड़े कार्य किए हैं. मेरे अतिप्रिय विश्वासपात्र भी हो। जाओ जल्दी से.." -श्रेणिक का चेहरा तप्त शलाका की तरह लाल हो चुका था। कुंडवैराट भी धरती पर निगाह गड़ाए पैर के अंगूठे से भूमि को कुरेद रहा था। लपटें विकराल रूप लेती जा रही थी। अब तो ऐसा लग रहा था कि अभी पूरा दुर्ग ही धराशायी हो जायेगा। "है कोई ? जो मेरे पुत्र को इस ज्वाला में से निकाल लाए ?" मैं उसै इच्छित वरदान दूंगा। ये शिशुनागवंशीय प्रसेनजित पुत्र वचन देता है। नगरवासियों की भीड़ की तरफ मुँह करके श्रेणिक गरजा। इन शब्दों नभमण्डल भी काँप उठा। उसकी प्रतिध्वनियाँ दसों दिशाओं में प्रसृत होकर गूँज उठीं। पूरा जनरव थम-सा गया। ऐसा लग रहा

था कि समय ही रुक गया है ।महल के सभी दास, चर, अनुसार महारानी एवं उपपत्नियों के भी हृदय व मुख झाड़ू से हो गए इस करुण चीत्कार से।"निवास हेतु पृथक भवन दूंगा, जिसमें जिंदगी के सारे आरामदायक साधन होंगे।" राजा ने लपटो को देखकर एक घोष और लगा दिया एवं किसी अवतार को प्रतीक्षा करते हुए राजा ने अपने नेत्रद्वय आकाश में गढ़ा दिए।मानो आज ही इन लपटो ने ठाना है कि गगन को भी जलाकर क्षार कर देगी। तभी तो इसे सर्वग्रासिनी कहा गया है। धुएं के बड़े-बड़े गुब्बारे वायुमंडल के क्रीडा करते हुए उसे कृष्णवर्णी बना रहे थे। तभी एक पगध्वनि उस जनसमूह को भेदती हुई राजा श्रेणिक के सन्मुख चली आ रही थी। पगध्वनि मे आभास हो रहा था कि कोई वीर पुरुष है। उसके कदमों की आहट एसी प्रत्यक्ष घोषाण कर रही थी। उसका चेहरा उस भीड़-समूह से अलग हो चुका था। पावक की लपटों के प्रकाश से उसका मुखमण्डल भी पीतवर्णी अरुणाभ-सा प्रतीत हो रहा था। "में कुमार को सकुशल निकाल लाऊँगा"। हाथ को ऊँचा उठा कर सुमुखी साहसपूर्ण शब्दों से कहा, "बस शर्त याद रखना।" उसके ये शब्द उस मानव समूह में सागर की लहरों की तरह गूंज गए। राजा श्रेणिक ने विस्फारित नेत्रों से उस युवक पर एक भरपूर दृष्टि डाली। बड़ा पराक्रमी लग रहा था। भव्य ललाट उसके वीरत्व का साक्षी, स्वस्थ भूजाएँ वीरों की प्रतीति करवा रही थी, नयनयुगल तेजस्वी व पारखी थे। उसका दीर्घ वक्ष योद्धा होने का साक्षी था । ऐसा लग

रहा था मानो किसी क्षत्राणी की कुक्षी से जन्म लिया हो, पूरे तन को मोटे पांसुकुलिक कम्बल से लपेट रखा था ।"जिन्दगी इतनी भी सस्ती नहीं है, जो कीमत अब तुमने लगा दी।" भीड़ में से ही एक हाथ उसे वापस खींच रहा था। वह हाथ जय का था, जिसके मुख पर न क्रोध था न रोष था, बस था तो प्रेम के वशीभूत आवेश।"जिन्दा रहा तो जिन्दगी को पूरे ऐशो-आराम से जीऊँगा ।" हाथ छुड़ाते हुए सुमुख बोल पड़ा । "और मर गए तो....." "उसका भी आलिगन करने में मुझे कोई परेशानी नहीं ।" "ठीक है। हम पाँचो भी तेरे साथ चलेंगे । जब खेले इकट्ठे हैं, खाया पीया साथ-साथ, हँसे-रोये भी इकट्ठे हैं, तो अब मृत्यु शय्या पर सोयगे भी इकट्ठे ही ।" जय सहित चार मित्र भी उस भेड़ों के रेवट से सिंह की चाल से बाहर आते हुए समवेत स्वर में बोले। चारों तरफ फिर कोलाहल-सा हो गया । "ये अग्नि परीक्षा लिए जा रहे हैं । बच निकले तो इनका शेष जीवन सती सीता की तरह कुंदन बन जाएगा।" भीड़ में से किसी ने ये वाक्य उछाला..... और यमप्रदेश में पहुंच गए तो होलिका की तरह..... "राजन्!" शीघ्रातिशीघ्र हमें जलव्याप्त दस-बारह स्थूल कम्बल चाहिए और यहीं एक जलकुण्ड की व्यवस्था भी। श्रेणिक के एक संकेत से सारी व्यवस्था हो गई। सुमुख सहित पांचों मित्रों ने रनिवास में प्रवेश का मार्ग पूछा एवं उन जल सिंचित मोटे कम्बलों को तन पर इस तरह ढ़ाँप लिया कि नेत्र ही

खुले में रहे, बाकी सारा शरीर आवृत्त रहे। जिसे अग्नि भी कठिनाई से भस्म कर सके, ऐसा एक छोटा वस्त्र राजकुमार हेतु लेकर उस अग्निकुण्ड में चरों मित्र एक साथ, इष्ट को स्मरण का नाद करते हुए कूद पड़े । बाहर खड़े जनसंकुल में प्रत्येक का कलेजा मुँह को आ गया एवं मन गहरे अवसाद में डूब गया। दुर्ग जितना बाहर से ज्वलित प्रतीत हो रहा था, भीतर से तो लगभग सारा ही अग्निसात हो चुका था। धुए व जले हुए काष्ठा को पार करते हुए जब वे शयन कक्ष में पहुंचे तो सभी आश्चर्यचकित हो गए। दावानल पर्यंक के चारों तरफ है, पर पर्यंक को छू भी नहीं रहा। वह पर्यंक बहुमूल्य अग्निरोधी पदार्थों से निर्मित था । वह नन्हा-सा अबोध बालक चिल्ला-चिल्ला कर शायद बचाव के लिए ही पुकार रहा हो। सुमुख के इशारे पर जय एवं देव ने आपस में हथेलियाँ बांधी और सुमुख को वहाँ पंजों के बल खड़ा कर पाषाण की तरह पर्यंक की तरफ उछाल दिया। सुमुख को तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो ज्वालामुखी में ही प्रवेश कर दिया हो। शय्या पूरी गर्म हो चुकी थी व पावक की लपटों से उत्पन्न ताप से राजकुमार का शरीर भी गर्म हो चुका था। अग्निरोधी वस्त्र में लपेटने से पहले कुमार के मुख के पास कर्पूरचूर्ण प्रक्षेप किया एवं एक नलकी राजकुमार के कोमल होंठों में फंसाई जो शायद श्वास-प्रश्वास क्रिया के लिए लगाई होगी, वह अग्निरोधी मोटे वस्त्र से बाहर ही रही। 'जय!' ध्वनि के साथ ही अग्निरोधी वस्त्र में आवेष्टित राजकुमार उसकी तरफ उछाल दिया। “हमारे वस्त्र भी पूर्णता: शुष्क हो चुके हैं, कभी भी आग इन वस्त्रों

को पकड़ सकती है. तुम पांचों नीचे जलकुंड में कूद जाओ, मैं भी आ रहा हूँ। सोपान के मार्ग अवरुद्ध हो चुके हैं।" शीघ्रता करो। समुख की इन बातों से लग रहा था मानो वह भागने के लिए न कह कर स्वयं हो अपने को बचाने हेतु करुण विलाप कर रहा हो।दूर्लध्य लपटों से आता हुआ सुमुख ऐसे लग रहा था जैसे ज्वालामुखी को भुजाबल से तैरकर पार करके आ रहा है। जब तक सुमुख शयन कक्ष से बाहर आया, दो मित्र नीचे कुण्ड में छलांग लगा चुके थे, तीसरा तैयारी कर रहा था। सम्मुख ने भी जलकुण्ड की तरफ कदम बढ़ाए, तभी एक भारी वृक्ष जलता हुआ सुमुख पर आ गिरा, जिससे उसके दोनों पैर दबकर स्तम्भित-से हो गए। मुख से तीखी विलाप की ध्वनि निकली जो कि ऐसी थी मानो किसी का प्राणान्त हो गया हो। "गवाक्ष हवा में उठा।" "दैव, तुम अभी.....। " सुमुख आगे कुछ बोल पाता तभी छत की एक कड़ी ज्वाला से लिपटी दैव के पृष्ठभाग से टकरायी और वह भी वहीं धराशायी हो गया। सम्मुख व दैव, दोनों जीवित रहने की आशा छोड़कर यम की प्रतीक्षा करने लगे। अब तक दोनों के वस्त्र भी भयंकर अग्नि की भेंट चढ़ चुके थे। "सुमुख ! दैव!" बार-बार रूधे हुए कंठ से चिल्लाते हुए व अग्नि को दोनों हाथों से परे करता हुआ जय भी वहीं पहुँच गया । राजकुमार.....,एक दबी हुई शायद अंतिम आवाज आई। "वह तो सकुशल श्रेणिक महाराज के हाथों में सौंप दिया गया`.....। " कहते

हुए जय ने सुमुख का हाथ खींचकर खड़ा कर दिया। "कौन लेकर गया ? " एक और शब्द निकला । "मैंने दया को दे दिया था ।" कहते हुए पता नहीं कहाँ से प्राणबल जुटाया व एक ही पाद प्रहार से उस जाज्वल्यमान काष्ठ को परे धकेल दिया। तीनों के शरीर में भयंकर दाह उत्पन्न हो रहा था, जय के भी वस्त्र पूरी तरह से जल चुके थे । एक पल को भी व्यर्थ जाया न करते हुए जय ने दाएं हाथ से सुमुख की कलाई व बाएं से देव की कलाई थाम कर पंद्रह-बीस अग्निवेष्टित कदम भरे और शीतल जलकुण्ड में छलाँग लगा दी । देखने वालों को आभास हुआ कि अग्नि के गोले कुण्ड में आकर गिरे हैं। इसके पश्चात छः वीरों को वैद्यशाला में भेजा गया, जैविक वहाँ का वैद्याचार्य था जिसकी वैद्यशाला आज के अधुनिक सुपर स्पैशलिटी हस्पतालों से भी अधिक विकासित था। जैविक श्रेणिक का बड़ा भाई दासी पुत्र था। कुछ दिन बाद महाराज श्रेणिक और महारानी चेलना उस वैद्यशाला में उन छः का कुशलक्षेम जानने के लिए पहुँचे, जैविक ने कहा- अब यह सकुशल हो रहे हैं और अगले पक्ष तक बिल्कुल सकुशल हो जाएंगें। ज्योंहि श्रेणिक ने वैद्यशाला में प्रवेश किया, समस्त अपने बिस्तर पर उठ कर बैठ गये, श्रेणिक ने कहा- तुम मेरे पुत्रों समान हो, " नहीं राजन् ! मुझे यह नहीं सुनना....."बीच में सुमुख का कठोर वाक्य गूँज गया। "वचन पूरा करो।" वाक्य छोटा, किन्तु तीखा था। वीर की तरह पलंग से खड़े होकर सुमुख बोला। इसे क्या हो गया ? कहीं बौरा तो नहीं हो

गया, जो मगधदेश को इस तरह कठोर शब्द में उपालम्भ दे रहा है। मगधेश भी पूरे जोश में आ गये-"माँगो ! क्या वचन चाहिए?"तुम कारागृह से मुक्त करवाना चाहते हो.....जिस नगरवधु पर अंगुली का संकेत करोगे, वही तुम्हारे चरणों में लोट जाएगी। माँगो.....? ये शब्द इतने भारी थे कि वैद्यशाला गूँज गई। "तो मुझे वचन दो कि इस मगध में ऐसा नियम बंध, हड़ी बंध, अवकोटक बंध और कारागृह नहीं होगा, जिसमें सुमुख कैद हो सके, चाहे मेरा कोई भी अपराध हो। कोई राजपुरुष, राज्याधिकारी व पुरजनवासी मुझ पर किसी भी तरह का अभियोग लगाए तो ये मगध का कोई भी कानून मुझे व मेरे साथियों को अपने बंधन में ना डाल सके।" सुमुख का स्वर ज्यादा तेज व ऊँचा था, जिसे सुनकर प्राकृति भी छिल गई व करुणा के आँसू बहाने लगी। बिना किसी प्रतिकार के श्रेणिक ने दायें भूजा से खड्ग धारण किया और उसे अपनी बाजू को पूरी ऊँचाई तक हवा में लहराते हुए कहा,"मै शिशुनागवंशीय प्रसेनिजत पुत्र इस सागर वत खडग का शपथ करते हुए सुमुख को वचन देता हूँ कि तुम छहो व्यक्ति मगध के कानून के ऊपर हो। तुम सभी हमेशा दण्ड से मुक्त रहोगे, चाहे तुम कुछ भी करो।" श्रेणिक ने यह वाक्य तीन बार दुहराया। इस घोष के साथ ही विहग समूह के कलरव से पूरा नभमण्डल गुँजाएमान हो गया और अंतरिक्ष में एक भयंकर

कान के पर्दे को फाड़ दे, ऐसा विस्फोट हुआ। दसों दिशाएँ तरंगत हो उठी और शब्द आकाश को छूने लगे।

-"राजन् ! स्मृति में रखना। कहा आज के पश्चात् आपके नियम,विधान, मर्यादाएँ, परम्पराएँ और अनुशासन मुँह खोलकर खड़े न हो जाएं।" इन शब्दों से सुमुख की पूर्ण उद्दण्डता का आभास हो रहा था। सकुशल होकर वे सब राजगृह में अपराध करने लगे। नगर की बहू-बेटियों से दुर्व्यवहार करना उनका नियम बन गया । उस नगरी में गोष्ठी अर्जुनमाली और उसकी अप्सरा सामान धर्मपत्नी बंधुमती का बहुत बड़ा फूलों का व्यवसाय था और एकड़ों मे फूलों का उद्यान था और उसमें उसे पुरखों ने एक देव मन्दिर बनाया हुआ था, जिसकी वह नित्य प्रतिदिन पूजा अर्चना करते थे। उसमें एक लकड़ की देव मूर्ति और उसके हाथ में लोहे का डेढ़ मन वजन का मुद्गर था। उन छः व्यसनियों की बंधुमती पर कुदृष्टि पड़ी और उसके साथ व्यभिचार करने का मन बना लिया । वह छः मन्दिर की ओट में छिप गये, ज्योंहि अर्जुनमाली और बंधुमती मन्दिर में प्रवेश कर दण्डवत् प्रणाम करने के लिए झुके, अर्जुनमाली पर प्रहार कर दिया और बंधुमती के वस्त्र फाड़ कर क्रीड़ा करने लगे। अर्जुनमाली कुछ समझपाता की उस पर और प्रहार कर दिया, यह सब कुछ अर्जुन की आँखों के सामने हो रहा था, फिर भी उसने हिम्मत जुटाई और चिल्लाया देव हम तुझे रक्षक समझ कर पूजा करते थे आज तुम भी इस में संलिप्त हो गये, अब तुम्हारी पूजा नहीं करूँगा और तुम को बाहर फैंक दूँगा, आज तक हम तुम्हें अपना

रक्षक मानते रहे, कि देव उस मूर्ति से बाहर आकर अर्जुन में प्रवेश कर गया और हाथ मे भारी मुद्गर, अर्जुन में प्रचण्ड रोष से उन पर आक्रमण कर दिया, सर्वप्रथम बंधुमती पर प्रहार किया कि तुम ने पतिव्रता की तरह प्राण क्यों नहीं त्याग दिए और फिर अन्य छः को मृत्यु के घाट पहुँचा दिया और प्रण किया कि मैं प्रतिदिन छः पुरुष और एक औरत की हत्या करूँ गा। राजगृह में त्राहि-त्राहि मच गई। राज्य कर्मचारी भी सफल नहीं हो पा रहे थे। राजगृह नगर के सारे द्वार बन्ध कर दिए गये। यह छः महीनें तक चलता रहा, पुरुश 972 और 162 औरतें इस भेंट में अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके हैं। समाचार मिला कि श्रमण भगवान महावीर बाहर गुणशील उद्यान में पधार रहें हैं। नगर से बाहर कोई जा नहीं सकता किन्तु जब यह समाचार सुद्रशन सेठ को मिला, तो वह भगवान के दर्शन करने की अभिलाषा से माता-पिता से आज्ञा लेने गया, उन्होंने बहुत विरोध किया, बाहर तो यमदूत बैठा है, कैसे भगवान तक पहुँच सको गे, सुदर्शन- यदि मौत आनी है तो घर पर ही आ जाएगी, अपनी जिद्द पर अड़ गया और आज्ञा प्राप्त कर श्नान कर नए कपड़े पहनकर मन में भगवान का स्मरण कर राजगृह के द्वार पर पहुँच गया, सारे नगर निवासी उसकी मौत को अपने-अपने घरों की छतों पर जाकर देखने लगे, द्वारपाल ने भी रोका, सुदर्शन ने कहा- नहीं तुम छोटे दरवाजे से मुझे बाहर जाने दो । बाहर निकल कर भगवान के दर्शनों के लिए चल पड़ा कि अर्जुन निस्तेज हो गया और पूछने लगा- तुम कौन, कहाँ जा रहे हो। सुदर्शन गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान महावीर पधारें हैं, मैं उनके दर्शन करने जा रहा हूँ, अर्जुन

मैं भी तुम्हारे साथ चलना चाहता हूँ, चलो वे दोनों चल पड़े और भगवान के दर्शन करते ही देव लुप्त हो गया और भगवान की करुणामय वाणी सुनकर वहीं पर भगवती दिक्षा ग्रहण कर, पहले पहर स्वाध्याय, दूसरे पहर ध्यान और तीसरे पहर गोचरी के लिए जाना । उधर सुदर्शन का राजकीय सम्मान के साथ नगर में पहुँचा और जब अर्जुन गोचरी के लिए राजगृह नगर में आया, तो जनता तरह-तरह के व्यंग, कोई लाठी से प्रहार कर रहा है, अन्य जैसे उनके सामने आता है प्रहार कर देता है, श्वेत वस्त्रधारी रक्तरंजित वस्त्रों से समता, विनय विवेक धारण उद्यान में पहुँचा कि एक चमार चमड़ा भिगोकर खैंचकर उद्यान में जाकर उसके मस्तक पर बाँध दिया, ज्योंहि चमड़ा सूखने लगा तंग होकर कपाल की हड्डियाँ तिड़कने लगी और अर्जुन ने सबसे क्षमायाचना कर संथारा ग्रहण कर देह त्याग किया की सीधा मोक्ष गामी हो गया।

राजगृह के शासन की व्यवस्था युवराज अभय कुमार संचालन करता था। वह धार्मिक वृत्ति के होने के कारण उसने दीक्षा का भाव पैदा हो गया और महाराज श्रेणिक से दीक्षा की आज्ञा मांगी। महाराज श्रेणिक अब उत्तराधिकारी कौन बने, कौणिक ही सब से उपयुक्त है । अभय कुमार आज्ञा पा कर माता नन्दादेवी के पास आज्ञा लेने गया तो वह भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई। दोनों ने महावीर के पास जाकर जैन भगवती दीक्षा स्वीकार कर तप में लीन हो गये। महाराज श्रेणिक ने कौणिक के सगे छोटे भाई विहल्ल और विहास को अठारह लड़ी का हार और सेचनक हाथी के साथ कुछ सेना दे दी। कोणिक ने अपने काल आदि दस बन्धुओं को एक गुप्त स्थान पर बुलाया और अपनी कुटिल योजना उपस्थित कर

कहा- पिता जी वृद्ध हो गये हैं, परन्तु राज्य की लालसा नहीं गई, चाहिए तो था कि योग्य पुत्रों को भार सौंप दे। अब सब मिलकर पिता जी को कारावास में डाल दें और राज्य के ग्यारह भाग कर के आपस में बाँट ले। कुटिल नीति सब ने स्वीकार कर श्रेणिक को बन्दी बना लिया, कई लेखक तो लिखते हैं कि श्रेणिक को अन्न-पानी भी नहीं दिया जाता था और कोढ़े लगवाए जाते थे।

एक दिन कोणिक अपनी माता चेलना को प्रणाम करने गया तो माता अति उदास देखकर कारण जानना चाहा। माता- " कुलकलंक! तेरे पिता जी तुम्हें बहुत प्यार करते थे, जब तू गर्भ में था और तेरी दुष्टात्मा ने पिता के हृदय का मांस माँगा, तो तेरी तुष्टी के लिए उन्होंने अपना मांस दिया, तब से मैं तूझे कुलांगार और पिता का शत्रु मानती हूँ। मैंने गर्भ में तेरा विनाश करने के भरसक प्रयास किये, परन्तु तू मरा नहीं, तेरे जन्म होते ही मैंने तूझे कूढ़े पर फिंकवा दिया, तेरी एक अंगुल कुरकट ने कट खाई, तेरे पिता ने तीव्र वहाँ जाकर तूझे उठाया और तेरी अंगुल को मुँह में रखकर पीप निकालते थे, जिससे तूझे शांती मिलती थी।" ऐसे वात्सल्य-धाम पिता को तूने जो दशा की वह कुलकलंक शत्रु ही कर सकता है।

" परन्तु माता ! पिता जी हम भाईयों में भेद रखते थे. वे अच्छी वस्तु मेरे छोटे भाई को देते थे और निम्नकोटि की मुझे। क्या यह प्रेम है।" कोणिक ने पूछा-

"यह भेद भाव तो मैं रखती थी, क्योंकि तेरे लक्षण तो मुझे गर्भ में ही मालूम हो गये थे।"

यह जानकर कोणिक के मन में बदलाव आया और पिता को मुक्त करने के लिए कारावास गया, महाराज कोणिक को आते देखकर सेवादारों ने श्रेणिक को अवगत करवाया। श्रेणिक ने समझा कि मुझे और दंड देने आ रहा है, अपनी अंगुल की हीरे की अंगूठी को मुँह में रखकर आत्महत्या कर ली । जब कोणिक पहुँचा तो पिता का शव ही मिला। घोर अघात लगा और कहने लगा- मैं महापापी हूँ, मुझे क्षमायाचना का भी समय नहीं दिया।

मन्त्रियों के कहने पर उत्तरक्रिया करवाई।

भारत के इतिहास में तीन महायुद्ध हुए- पहला रामायण काल श्री राम और रावण के बीच का, दूसरा महाभारत काल का कौरव और पांडवों के बीच और तीसरा रथमूसल नाना श्री चेटक और दोहता कोणिक के बीच महावीर काल में दोनों भगवान महावीर के उपासक ही नहीं चेटक मामा और कोणिक मामा का दोहता था । तीनों युद्ध की पटकथा के पीछे मूल नारी का सीधा कारण है । घर की शांती का मूल कारण नारी है और नर की प्रेरणा शक्ति भी नारी है, निर्माण की मोक्ष शक्ति भी नारी है। नारी एक रचनात्मक विद्या है तो नारी विध्वंस की आंधी भी है, त्याग की अन्तिम तथा सम्पूर्ण व्याख्या का नाम यदि नारी है तो नरक की सीढ़ी भी नारी है । नारी ने मिट्टी से नहीं अपने रज से चक्रवर्ती एवं तीर्थंकरों को जन्म दिया । नारी ने ही नरक तक चक्रवर्तियों को और तीर्थंकरों को मोक्ष तक का रास्ता प्रशस्त किया । यह गंगा सी पवित्र और वैतरणी सी

कीचड़मयी भी है । भारत में नारी देवी के रुप में मानी जाती है और भारत में ही नारी की दूर्दशा भी होती है । सती प्रथा, बाल विधवा को अशुभ और पुरुष प्रधान देश नारी को जूती के समान की कुरीतियां भी भारत में ही हैं । जहां बच्चियों को कंजक के रुप में पूजा जाता है वहीं आजकल बलत्कार की घटना भी होती रहती हैं ।

पहला रामायण काल श्री राम और रावण के बीच का, दूसरा महाभारत काल का कौरव और पांडवों के बीच युद्ध समस्त भारत में ही नही अपितु परे विश्व में प्रसिद्ध है जबकि तीसरा रथमूसल युद्ध केवल जैन संस्कृति में ही प्रसिद्ध है क्योंकि युद्ध के नायक अहिंसा के लम्बरदार श्रमण भगवान महावीर के उपासक होते हुए आपस में क्रोधाग्नि के शिकार हो गये । अहिंसा कायरता नही अहिंसा सत्य का मार्ग है । यदि इस युद्ध का कारण महारानी पद्मावती धर्मपत्नी महाराजा कौणिक है परन्तु मूल कारण पूर्व जन्म कृत कर्म है । थोड़ी से दृष्टि डाले कि किसी का उपहास करना और उपेक्षा कर अपनी वचनबद्धता को विस्मृत हो जाना अन्याय से दुःखी आत्मा क्या रुप धारण करती है, प्रभु महावीर ने कर्म बंध का उल्लेख करते हुए राजा श्रेणिक और कोणिक के पूर्व भव बताया।

पूर्वभव में राजा श्रेणिक भरत क्षेत्र का वसन्त नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था और उसकी पटरानी अमरसुन्दरी नामक की देव कन्या थी और उसके पुत्ररत्न पैदा हुआ जिसका नाम सुमंगल (श्रेणिक) था और जितशत्रु का मन्त्री के श्येनक नाम का पुत्र हुआ जो पूर्वकृत प्रबल पाप कर्मों से जुगस्पाप्रेरक शरीर जिसकी अकृति देख सुमंगल उपहास

करता रहता था जिससे श्येनक अति दुःखी होता था वह इस अपमान को सहने में विचलित हो जाता था और अस्वस्थ हो गया आखिरकार दुःखी हो कर बिना किसी को बताए वह वसन्तनगर से दूर प्रदेश जा कर तपस्वियों के सम्पर्क में आया, दुख-गर्भित वैराग्य हो गया दीक्षा धारण कर घोर तपस्या मास-मास का तप करने लगा। इधर सुमंगल वसन्तपुर का महाराजा बन गया । श्येनक भी विचरते हुए वसन्तनगर पधार गया जनता पहचान लिया यह मन्त्री पुत्र घोर तपस्वी है और उनका आदर-सम्मान करने लगे और महाराजा सुमंगल को भी पता चल गया और वह प्रायश्चित के भाव से उसको मास खमण के पारणें के लिए प्रार्थना कि जिसे शेयनक ने सहर्ष स्वीकार कर ली। समय आने पर श्येनक राजमहल पहुँचा कि महाराज अस्वस्थ हो गये और किसी ने पारणें के लिए नहीं कहा ,श्येनक वापिस अगले मास खमण धारण कर तप में लीन हो गया फिर सुमंगल ने महल में पारणें करने की विनती की और समय आने पर बिमार हो गया, फिर अगले मास खमण में लीन हो गया और फिर स्वस्थ होकर राजमहल में पारणे की विनती की ऐसे छः मास बीत गये और श्येनक पारणें के लिए राजमहल गये, पारणे की पूरी तैयारी की गई, जब श्येनक राज महल पहुंचा तो राजा अस्वस्थ हो गये, कर्मचारियों ने कहा- यह मनहूस है जब आता है महाराजा बिमार पड़ जाते है और उसकी पिटाई कर डाली जिससे श्येनक का कोई भी अंग ठीक न रहा और तड़पता हुआ नियाना कर लिया कि मेरी तपस्या का फल मैं इससे आवश्य बदला लूँ और मर कर वाणव्यंतर देव बना, उदर

सुमंगल भी स्वस्थ होकर प्रायश्चित भाव से तापस बन गया और मृत्य के बाद व्यंतर देव बना । आगे चलकर दोनों च्यवन कर सुमंगल राजा श्रेणिक बना और श्येनक महारानी चेलना के गर्भ में आकर कौणिक के रुप पुत्र हुआ । वैर भाव से कौणिक पिता को बन्दी बनाकर राज्य छीन लिया और श्रेणिक को प्रतिदिन कोड़े लगवा मृत्यु दंड दे दिया ।

राजा श्रेणिक अपने बचपन काल में अतिसुन्दर ऐश्वर्य से भरपूर और बौद्ध भिक्षुओं का अनुयायी था एकबार उसने किसी तपस्वी सन्त के गले में सर्प डाल दिया जिससे सातवीं नरक का बंध हो गया । चेलना इनकी तीसरी पत्नी थी और राजा चेटक की पुत्री थी जो भगवान महावीर का अनन्य उपासक था और वह गणतन्त्र राजगृही का अधिपत्यी जिसके अधीन नौ लच्छी और नौ मल्ली महाराजे थे । रानी चेलना ने महाराजा श्रेणिक को जैन धर्म में परिवर्तित कर भगवान महावीर का अनुयायी बना और भविष्य जानकर प्रायश्चित से तीर्थंकर गोत्र का बंध किया जिससे अगले आने वाली चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर होगें।
युद्ध का कारण- राजा श्रेणिक का बड़ा बेटा अभय कुमार था वह कौणिक से भिड़ना नही चाहता था और वे पांचमहाव्रत अंगीकार कर जैन भिक्षु बन गया । महाराजा श्रेणिक ने कौणिक की राज्यलिप्सा को भांपते हुए अपने पुत्र वेहलकुमार को एक सेंचानक गंदहस्ती , कुछ सेना और आठारह लड़ी का हार सौंप दिया । जिससे वह अपनी मस्ती में सज-धज कर रानियों सहित गंगा स्नान हेतु निकलते, जलक्रीड़ा करते. रानियों की मस्ती तथा हाथी की विवध कलात्मक कला कौशल से भरपूर आनन्द

से जनता के प्रिय बन गए, अभय कुमार के वैराग्य से वह भी धार्मिक वृति से कोणिक और काल कुमार आदि दस भाईयों की मण्डली से दूर रहने लगा । उधर रानी पद्मावती जब दासियों द्वारा प्रशंसा सुनती तो मन में ईर्षा से महाराजा कोणिक को कहने लगी आप के राज्य में सुख-समृद्धि वैभव से भरपूर है परन्तु मेरी इच्छा है कि मैं भी आठारह लड़ी का हार पहन कर गंधहस्ती की सवारी कर आप के साथ गंगा श्नान करूं।
कोई बात नहीं मै वेहल कुमार को कह दूँगा कि गंधहस्ती और आठ लड़ी हार दे दे । वेहल कुमार को कहा गया और वह षडयन्त्र समझ गया और नाना चेटक की शरण में चला गया । कई बार राजदूत भेजे परन्तु चेटक ने समझा-बुझा कर वापिस भेज दिये और फिर कहा यह हमारे घर का मसला है बीच में रिश्तेदारों को नहीं आना चाहिए । राजा चेटक ने बड़े सम्मान ढ़ंग से कहा आप भी उसी पिता के पुत्र है, ये भी इसलिए आप अपने साम्राज्य का आधा भाग दो हार, हाथी और वेहल्ल कुमार आप को मिल जाए गा । कोणिक को अपनी युद्ध कौशल का अंहकार नाना की बात न मान कर युद्ध की ठान ली और दस भाईयों के साथ परामर्श उनको युद्ध में साथ आने का निमन्त्रण दिया और रानी पद्मावती ने शतरंजी चाल अपने खून से कोणिक को तिलक कर क्षत्रियपन पर विवश कर दिया । राजा चेटक वैशाली का महाराजा था और उसके अधीन नौ लच्छी और नौ मल्ली राजाओं को बुला कर कहा अहिंसा कायरता नहीं, शरणागत आये की रक्षा करना हमारा दायित्व है, आप के विचार, सब ने कहा हम युद्ध के लिए तैयार ।

मैदान में दोनों तरफ फौजें आमने- सामने हो गई, कोणिक के अधीन उसके दस भाई अपनी अपनी सेना लेकर पहुँच गए, जिसमें कोणिक के पास 33 हजार हाथी, 33हजार घोड़े और रथ एवं 33 कोटि सेना मेदान में आ गई। राजा चेटक एवं उसके अधीन 18 गणराज्य के नरेश जिसमें 57 हजार हाथी, 57 हजार घोड़े और रथ एवं 57 कोटि पैदल सेना मेदान आ गई। राजा चेटक ने कहा धरती को रक्तरंजित करने का कोई लाभ नहीं होगा। कुमार काली सभी रिश्ते भूल कर ने कहा- बूढ़े क्यों मौत को निमन्त्रण दे रहा है कह कर बाण चला दिया, राजा चेटक इतना कुशल था कि उसी समय उसने अपने बाण से काट कर काली कुमार का अन्त कर दिया। कोहराम मच गया और काली कुमार की सेना में भगदड़ मच गई। ऐसे ही कोणिक के दस भाई लड़ते दस दिन में मारे गए। अब कोणिक अकेला रह गया। युद्ध के समाचारों से चम्पा में भयावत छा गया और भगवान महावीर का पदार्पण हुआ और महारानी काली ने प्रभु से पूछा युद्ध में मेरा पुत्र कैसा है। महावीर निमित्त से चेटक का शिकार हो गया इसी प्रकार सभी राज कुमार मारे गये धरती रक्तरंजित हो गई तभी सभी महारानियां शोक विहल होकर आर्त ध्यान मे चली गई और प्रभु महावीर की वाणी से संभल कर सब दीक्षित होकर कठिन तपस्या कर संथारा संलेखना से शरीर त्याग किया।

कोणिक युद्ध का अकल्पित भयानक देख कर हताश हो गया, विचार करने लगा कि बिना विचारे महाराज चेटक की शक्ति मैं युद्ध करने लगा, अब यह मेरा भी अन्त कर देगा, अब

युद्ध करना उचित नहीं परन्तु निर्लज्ज हो कर लौटना भी उचित नहीं, पूर्व जन्म में तपस्वी था तो चेटक के पास दिव्य शक्ति जिसे जीत कोई नहीं सकता । कोणिक ने तेले तप की अराधना देव सहायता के लिए की जिससे भवनपति का देव चमरेन्द्र और देवलोक का देव शकेन्द्र आकर्षित होकर उपस्थित हुए और पूछा क्यों अवाह्न किया ।

"देवेन्द्र ! मैं संकट में हूँ । मेरी सहायता कीजिए और दुष्ट चेटक को नष्ट कर दीजिए । " कोणिक ने याचना की ।

" कोणिक तुम्हारी माँग अनुचित है . चेटक नरेश श्रमणोपासक और मेरे साधर्मी हैं। मैं उन्हें नहीं मार सकता, हां तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ जिससे तुम्हारी विजय हो ।" शकेन्द्र ने कहा !

कोणिक को इससे सन्तोष हुआ और शस्त्र सज्ज अपने उदायी नामक हस्ति-रत्न पर सवार होकर मेदान में उतरा, शकेन्द्र ने एक वज्रमय कवच कर कोणिक की सुरक्षा की और फिर इन्द्र ने महाशिलाकंटक नाम का युद्ध की व्यवस्था की जिसमें मनवेन्द्र और देवेन्द्र नाम के देवता और विपक्ष में चेटक और अठारह गण राजा और विशाल सेना थी। परिणाम शत्रु के लाए हुए विशाल शिला भी एक छोटे कंकर के समान हो हुए और कोणिक की तरफ से चलाए कंकर महाशिला बन गए, इस देव-चलित युद्ध ने चेटक की सेना का विनाश कर दिया, वहुत से मारे गये बहुत घायल हो गये और बाकी भाग गये, गण राजा

भी भाग गये और इस युद्ध में चौरासी लाख सेनिक मारे गये जो नरक तिर्यन्च योनि में उत्पन्न हुए।

दूसरे दिन रथमूसल संग्राम हुआ। अपनी पराजय और सुभटों के विनाश होते हुए पुनः चेटक नरेश अपने अठारह राजाओं की सेनाओं के साथ मेदान में उतरे और कोणिक अपने भूतानन्द हाथी पर आसीन हो मेदान में आया। आगे-पीछे देवताओं का कवच। चेटक का सेनापति वरुण जो ऋद्धिसम्पन्न था को चेटक का निमन्त्रण मिला तो उस दिन उस का बेला (दो व्रत) था वह बिना पारे तेला ग्रहण कर रथमूसल संग्राम में उतरा सामने कोणिक का सेनापति ने कहा- चला तेरा शस्त्र मैं सावधान हूँ। " नहीं मित्र, मैं श्रमणोपासक हूँ, जब तक मुझ पर कोई वार नहीं करता, मैं अपना शस्त्र नहीं चलाता, तुम्हारे वार के बाद मैं प्रहार करूँगा। इतने में कोणिक के सेनापति ने वार कर दिया जो वरुण की छाती में धस गया और बिना प्रवाह वरुण ने बाण चलाया जिस से शत्रु क्षत-विक्षत हो कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। घायल वरुण ने रणक्षेत्र से अपना रथ हटाया, बाण निकाला,घोड़े खोले और मुक्त कर दिया। संथारा ग्रहण कर अरिहन्तो-भगवंतो को नमस्कार किया, हे भगवन्, आप मुझे देख रहे हैं पहले मैंने आपसे जीवन पर्यन्त स्थूल परिग्रह किया था अब मैं पापों का सर्वथा त्याग, अन्नशन-पानादि और इस शरीर का भी त्याग करता हूँ। चेटक भी अपने अबोध बाणों से शत्रु से जुझने लगे परन्तु देवमाया के आगे विफल होते गये। इस युद्ध में देवमाया से एक रथ बिना अश्व, बिना रथवान के युद्ध

क्षेत्र में आ गया, चारों तरफ घूमता है और रथ में से मूसल समान अस्त्र निकल शत्रु पर प्रहार करते हैं जिससे चेटक के छियानवें लाख सेनिक रथ-मूसल संग्राम की भेंट चढ़ गये और अठारहों राजा भाग खड़े हुए, चेटक की पराजय हुई जिससे इसका नाम रथ-मूसल संग्राम पड़ा।

रात को वेहल्ल-वेहास कोणिक के शिवर में पहुँच कर असावधान सेनिको का संहार किया। अपना काम करके वह रात्रि के अन्धेरे में वापिस आ गये। बहुत खुश,उधर इस प्रकार का विनाश देख कोणिक चिन्तित, मन्त्रियों से विचार-विमर्श, मन्त्रियों ने कहा सचेनक हाथी का काम तमाम हो जाए तो उपद्रव रुक सकता है।

उनके आने के मार्ग में खाई खोद कर, खेर की लकड़ी के साथ अंगारे भरे गये और उसे ढ़क दिया गया जिससे किसी को शंका न हो। वेहल्ल अपनी सफलता से उत्साहित वे पूर्व की भांति शत्रु का विनाश करने आये, जिससे गजराज को आगे आने वाली विपत्ती का ज्ञान हो गया और रुक गया,क्योंकि वह विभंगज्ञान वाला था।

स्वामी ने कहा- सचेनक आज तू भी अकड़कर पशुपन दिखाने लगा, तू कायर क्यों हो गया, तेरी बुद्धि और साहस लुप्त हो गये। कटु वचन सुन कर सचेनक ने अपने स्वामी को बलपूर्वक गिरा दिया और आगे बढ़ गया और अग्नि भरी खाई में जा गिरा और जल मरा। जिससे विहल्ल कुमार भगवान की शरण में चला गया और दीक्षा धारण कर ली। चेटक भी वैशाली चला गया, जीवन से ऊब गया, जिससे सत्यकी अकाश

मार्ग से विशाली आया और चेटक तथा नगर निवासियों को उड़ा कर पर्वत पर ले गया। चेटक ने मरने का मन बना कर एक कुँए में कूद पड़े उधर घरणेन्द्र ने उपयोग से देखा सधर्मी भाई चेटक को उठा कर अपने भवन में ले गया, वहां जाकर अलोचनादि कर अरिहंत शरण धर्मध्यान युक्त आयु पूर्ण कर स्वर्गगमन किया। कोणिक मर कर छटे नरक में गया।

यह सब पूर्व कर्मों का खेल है हमें सावधान करता है कि वैर-विरोध मे किसी का उपहास न करे और जितने भी दुःख हम झेलते है वह सब पूर्व जन्मों में किये कृत-कर्मों का फल है सुख-दुःख देने वाला कोई और नहीं हमारे अपने ही कर्म हैं। यह हमारे अन्तगढ़ सूत्र के आठवें अंग का आठवां अध्याय है जो पर्युषण पर्व के आठवें दिन वाचना होती है किन्तु हमारे श्रमण-श्रमणियां आगम वाचना करते हुए श्रेणिक और कोणिक के पूर्व कृत कर्म का विवेचन नहीं करते जो आज के युग में अति उपयोगी है। आज शुभ कर्मों से जिस पर श्रीदेवी की अपार कृपा हो जाती है वह अहंकार में निर्दोष-असहाय को शोषण,उपहास एवं तिरस्कार करने से नहीं चूकता जिससे न जाने कैसे कर्म बन्ध हो जाते है और अबाधा काल पूर्ण होने पर जब हम दुःखी होते हैं तो भूल जाते है पूर्व जन्मों में हम कौन से कर्म बन्ध कर आये है और दोष किसी ओर को देते रहते हैं।

रथमूसल देवमाया का यन्त्र था जो आजकल के परमाणु शक्ति के समान था और कोणिक ने य़ह युद्ध में प्रयोग किया जिससे लाखों का प्राणान्त हो गया। वैदिक संस्कृति में यह बिम्बसर नाम के महाराजा से प्रसिद्ध है।

श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष तक गृहवासी रहे, बारह वर्ष से अधिकछद्मस्थ साधु अवस्था और कुछ कम तीस वर्ष केवल तीर्थंकर रहे। इस तरह कुल बयालीस वर्ष में अपने समूह कर्मों को क्षय कर निर्वाण कर सिद्ध-बुद्ध हो गये।

भगवान का पहला चातुर्मास अस्थिक ग्राम में किया, चम्पा और पृष्ट चम्पा में तीन, वैशाली और वणिज्य ग्राम में बारह, राजगृह और नालन्दा में चौदह, मिथिला में छह,भद्रिका में दो,आलंभिका में एक और श्रावस्ति में एक और अन्तिम पावापुरी में किया। अब उनका शासन चल रहा है।

स्वतन्त्र जैन जालन्धर
985528597